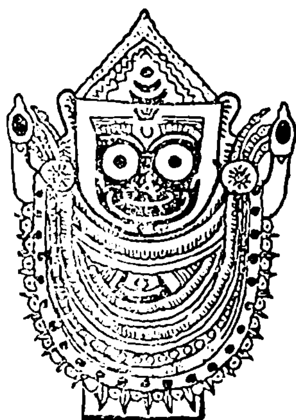
हमारे जगन्नाथ



श्री नरसिंह मिश्र

हमारे जगन्नाथ



लेखक : श्री नरसिंह मिश्र
अनुवादक : उदयनाथ बेहेरा

नव साक्षर साहित्य माला

हमारे जगन्नाथ

लेखक

श्री नरसिंह मिश्र

चित्रशिल्पी

श्री दुर्गाप्रसाद पण्डा
आरखेम, भुवनेश्वर

नैशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया

प्रकाशक

राष्ट्रभाषा समवाय प्रकाशन
राष्ट्रभाषा रोड़, कटक-७५३००१

मूल्य

तीन रुपये

प्रथम मुद्रण

१९८६

मुद्रक

श्री गोपीनाथ साहु
राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस
राष्ट्रभाषा रोड़, कटक-१

एक बात

ओड़िआ जाति ने दुनिया की सभी जातियों से कितना क्या पाया है, उसकी कोई तुलना नहीं । क्या वह ऋणी बन कर रहा है? सभी से सब कुछ पाया है, क्या किसी को कुछ भी नहीं दिया है? दुनिया को उसने एक उपहार दिया है। वह है जगन्नाथ धर्म। सभी धर्मों के सार को मिला देने से जो बनेगा, वही हमारा जगन्नाथ धर्म है। जगन्नाथ धर्म में सभी धर्मों के विचार भरे पड़े हैं।

बहुत पंडित तथा साधु अपनी बड़ाई ले कर जगन्नाथ-धाम में आते हैं। पहुँचने पर देखते हैं, वे जो ले कर आये हैं, वे सब यहीं हैं। आखिर वे अपने को उसीके अन्दर खो देते हैं। महानदी जैसी कई बड़ी बड़ी नदियाँ इसी तरह अपना बड़प्पन सागर में मिला देती हैं ।

जगन्नाथजी के बारे में लोगों के मुँह से कई कथाएँ चली आ रही हैं। यह किताब उनमें से कइयों को ले कर उन्हीं लोगों की सेवा में जा रही है। देने को भला मालूम हो तो आशा है, लोग उसे सादर स्वीकार करेंगे।

विनीत

। लेखक ।

प्रकाशक को लेखनी से

आनन्द का विषय है कि मूल ओड़िआ रचना 'आम जगन्नाथ' पुस्तक का हिन्दो रूपान्तर है 'हमारे जगन्नाथ' नैशनल बूकट्रस्ट, नई दिल्लो की पृष्ठ-पोषकता में ओड़िआ भाषा में, ग्रामीण पुस्तक प्रकाशन कार्यक्रम के अधीन, नव साक्षरों के लिए १९८३ ई० में यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी। १९८४ में उक्त संस्था की ओर से इसे जातोय (राष्ट्रीय) पुरस्कार भी मिला था।

पुस्तक के लेखक श्री नरसिंह मिश्र ओड़िआ भाषा के सुपरिचित लेखक हैं। ओड़िशा में नव-साक्षर आंदोलन के वे हैं एक प्रधान प्रवक्ता। नव साक्षरों के लिए उनकी रचित पुस्तकें अत्यन्त जनप्रिय हैं। ओड़िआ भाषा में उनके लगभग पचास उपादेय प्रकाशन हैं।

इस पुस्तक का अनुवाद किया है श्रीयुत उदयनाथ बेहेरा ने। उनका अनुवाद सरल, सावलील तथा सुन्दर हुआ है। इससे वे धन्यवादार्ह हैं।

राष्ट्रीय पुस्तकन्यास की अनुमति से इस पुस्तक का हिन्दो रूपान्तर प्रकाश करने की लेखक ने हमें अनुमति दी है। अतः इस प्रकाशन संस्था के प्रति आभार मानते हैं।

हमें आशा है कि हिन्दी में इस जनप्रिय पुस्तक के प्रकाशन फलस्वरूप हिंदी भाषाभाषी लोगों को अपने सर्वप्रिय ठाकुर जगत के नाथ, जगन्नाथ जी के बारे में थोड़ी बहुत धारणा हो सकेगी। श्री जगन्नाथ जी की कृपा सब पर हो।

प्रकाशक

हमारे जगन्नाथ

"हे चकाडोला ! ("हे बड़ो बड़ो आँखोंवाले !
हे बलियार भुज ! हे बलशाली भुजाओंवाले !)
हे महाबाहु ! दुःखी के दुःख का मोचन करो हे महाप्रभु ।"
आह ! कैसी विकल विनति, कैसी करुण पुकार, दोनों भुजाओं को उठाकर भक्त आकुल निवेदन करता है । युग युग का निवेदन यह ।

जगन्नाथ ओड़िआ जाति के देवता ! उसके कुल के ठाकुर । उसके जीवन के साथी । उन्हें छोड़कर वह पलभर जी नहीं सकता । विपद-आपद, शुभ-अशुभ, भलाई-बुराई में वही ठाकुर । नवजात के सौरीघर में उन्हें पुकारा जाता है । बच्चों को मुँहजूठी के समय उनको पुकारा जाता है। पहली बार खड़िया छूने के समय, वह बड़े ठाकुर की आँख और हाथ का चित्र खींचना सीखता है । बच्चों के विवाह-गौने के समय उनकी स्थापना की जाती है।

सर्वमङ्गल जगन्नाथ ।

विवाह के पूर्व वर-कन्या के जातक मिलाने या गिनाने की जरूरत नहीं । उनका नाम लेते ही सब ठीक हो जाता है ।

बड़े ठाकुर की याद कर वह मकान का शुभारंभ करता है। खेती-बारी, रहन-सहन, मेला-जात्रा, (महोत्सव) हरेक बातों में उसके बड़े ठाकुर की याद सबसे पहले की जाती है। जैसे वे उसके घरके मालिक हों। उनकी आज्ञा न मिलने पर वह किसी भी मामले में आगे नहीं बढ़ता। जैसे इस जाति ने जगन्नाथजी को अपने ही घरका आदमी समझ लिया हो। वह जो कुछ खाता है, सब उनके लिए जुटाता है। गाँव के सामान्य लोगों का प्रिय भोजन शाग, माँड़भात, बड़ी, सादीसब्जी धान के छिलके के महीन चूर्ण की पोठी भी उन्हें बहुत पसंद है। वास्तव में वे ठाकुर उनके कितने अपने हैं!

"अपनापन के भाव में पर-अपर का बोध कहाँ ?
जो अपना सो अपना है, नहीं भेद-अभेद तहाँ।"

जगन्नाथजी सिर्फ ओड़िआ के नहीं, सम्पूर्णभारत के, निखिल विश्व के हैं। उनके सम्बंध में अनेक कथाएँ है। कहावतें, लोककथाएँ, किंबदंतियाँ और प्रवाद जगन्नाथजी के चारों ओर मकड़ी के जाल की तरह घिरे हुए हैं। कौन-सी कथा कितनी मनगढंत है, यह बताना सहज नहीं।

लोग कहते हैं, "यदु वंश के ध्वंस होने के बाद श्रीकृष्ण गहन वन मे सोये हुए थे। लाल रंग के दो पैर दूर से हिरन के कान जैसे दिखाई देते थे। जारा शवर वन में घूमता था। देखते ही सोचा, शायद एक हिरन सोया है। उसने तीर मारा। कृष्ण पीड़ा से छटपटाने लगे। जारा अपनी गलती समझकर खूब रोया। कृष्ण को तरस आ गया। उन्होंने कहा, "जारा! चिंता मत करो, तुमने ठीक ही किया है। यदुवंश के ध्वंस होने के बाद और जीने की क्या जरूरत है? आशिष देता हूँ, तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी। और क्या वरदान चाहते हो, माँगो।"

जारा गद्‌गद् हो गया। कहा, "ठाकुरजो! आप ने इतने बड़े पापो को क्षमा दी। ईश्वर के अलावा और कौन इस तरह क्षमा दे सकता है? यदि इतनो दया है, तो मुझे यही वर दोजिए कि युग युग तक मैं आपकी सेवा करता रहूँ।"



"तथास्तु! तथास्तु!" इतना कहकर कृष्ण ने शरीर छोड़ दिया। अगले युग की कथा : जारा शवर के वंशधर थे राजा विश्वावसु। वे विष्णु के परम भक्त थे। वे नोलमाधव को पूजा करते थे। उन्होंने गहन वन के बीच एक गुप्त गुफा में ठाकुरजो

को स्थापना को थी। उनपर किसीकी नजर नहीं जाती थो। कंटीली झाड़ियों-झुरमुटों के बीच एक पतली सी पगडंडी थी। उसे एकपदी रास्ता भी कहते हैं। वे रात को एक मणि लेकर उसीके उजाले में आते हैं। बाघ-भालू उनके पास नहीं फटकते।

पुरी जिले का कण्टिलो यहाँ नीलमाधव की पूजा की जाती है। ठाकुर जहाँ हैं, लोग उसको बाघ गुम्फा कहते हैं। तब यह क्षेत्र कंटीली झाड़ियों से भरा हुआ था। शायद इसीलिए इसे कण्टिलो नाम दिया गया है। न जाने किस जमाने से यहाँ नीलमाधव की पूजा होती चली आ रही है।

राजा इन्द्रद्युम्न भी परम विष्णु भक्त थे। उनके सेनापति का नाम था विद्यापति। विष्णु-मूर्त्ति कहाँ हैं? विष्णु-मूर्त्ति की खोज में चारों ओर आदमी भेजे गए। विद्यापति पूरब दिशामें आये। वे इसी अरण्य क्षेत्र में आ पहुँचे। वे अरण्य-प्रदेश के चप्पे-चप्पे में खोजते फिरे। आँखों के सामने एक बड़ी नदी बहती है जो समुद्र-सी दिखाई देती है। थकान के मारे वे नदी के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गये। एकाएक उन्हें हँसी की लहर सुनाई पड़ी। वे चौंक उठे। ऐं, हंसता है कौन? ओह! यह लो, कुछ लड़कियां वन की हिरनियों की तरह नाचती-कूदती उसी ओर आ रही हैं। विद्यापति पेड़ की ओट में छिप गये। हँसी-मजाक, चिकोटी काटती हुई कल कल-छल छल हास। उनमें से एक लड़की बहुत ही खूबसूरत है। जैसे कि तारों के बीच एक चाँद। बहुत ही हँसमुख। उन लोगों ने विद्यापति को नहीं देखा है।

"ललिता! ललिता! सभी की ओठों पर वही एक शब्द। किसी ने उस हँसमुख लड़की को ढकेल दिया। नदी की धारा में

उसके पैर फिसल गये । सबको करुण पुकार गूंजउठो, "ललिता ललिता !" विद्यापति ने दौड़कर उसे पकड़ लिया । बचगई, बचगई ।



कुछ अलग हट कर ललिता खड़ो थी। हमजोलियों की टोलो उसके नजदोक आ गई। उसने कृतज्ञतावश विद्यापति के मुँह को ओर देखा। उन्होंने कितना उपकार किया? ललिता मुंह नीचे किए खड़ो थो। एक सखो ने जा कर विश्वावसु को खबर दी:- "ललिता को किसो विदेशो ने छू दिया है।

कुआँरी कन्या को किसो विदेशो ने छू दिया है। खबर मिलते ही विश्वावसु दलबल सहित वहाँ पहुँच गये। ललिता अपने पिता के आते ही उन्हें करुण भाव से देखने लगी। राजा अपनो बेटो के पास जा कर खड़े हुए। विद्यापति की ओर देखा। एक सुन्दर ब्राह्मण युवक। देखने में शांतशिष्ट। आंखों से सरलता टपकती हुई। बहुत ही अच्छा लगा उन्हें। दिल से गुस्सा गायब हो गया। उन्होंने कहा, "हे युवक! मेरी कुआँरी बेटी को छूकर तुमने गलती को है। सजा भुगतनी पड़ेगी।"

विद्यापति ने शांत स्वर में कहा, "देखिये महाशय! वह नदी को धारा में बहती जा रही थी। मैंने सिर्फ उसे बचाया है। यदि नहीं पकड़ता तो वह बह गई होती। अगर इस प्रकार का छूना अपराध है तो मैंने अनजाने में वैसा किया है। फिर भी यदि सजा मिलेगी, तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा।"

विश्वावसु ने कुछ सोचा। कहा, "देखो युवक! मुझे अपने कुल का आचार तथा धर्म पालन करना होगा। कुआंरी कन्या को जो छूता है उसे कन्या को ग्रहण करना ही पड़ता है। इस दण्ड विधान में किसी प्रकार की छूट नहीं दी जा सकती।

विद्यापति ने सिर झुका लिया। धीर भाव से कहा, आप की सजा मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं। ठाकुर की इच्छापूर्ण हो।"

विद्यापति और ललिता। दोनों का जीवन एकाकार हो गया। ब्राह्मण के बेटे और शबर (भील) की बेटी का मिलन। क्या

ठाकुरजी की यही इच्छा थी ? कुछ अनहोनी तो नहीं होगी ? मन में इस प्रकार की कई भावनाएं, कई चिंताएं उठने लगीं।

उसके बाद मौज-मस्ती में समय बीतता गया। विद्यापति जिस खोज में आये थे, उसे भूल गये। एक दिन की बात है— वे रात को सोये हुए थे। उन्होंने सपना देखा कि इन्द्रद्युम्न की रानी उनके सामने खड़ी हैं। उनका मुंह सूख गया है। वे कहती हैं, "विद्यापति! क्या तुम भूल गये ? अब तक नहीं लौटे ? क्या ठाकुर का ठौर ठिकाना नहीं ढूंढ सके ?



एकाएक उनकी नींद उचट गई। आँखें खुलीं। देखा, अंधेरे के भीतर रानी का चेहरा धंसता जा रहा है। उनकी आँखों में आँसू लबालब भर आये। कितनी बड़ी भूल उनसे हुई

है। उन्हें जरूर लौटना होगा। ठाकुरजो को न पाने तक शांति नहीं। वे जरूर जाएंगे।

सबेरा हुआ। ललिता ने विद्यापति को उदास बैठे देखा। उसने पूछा, "क्या हुआ ? मुँह क्यों सूख गया है ?" विद्यापति ने व्यथित मन से कहा, "मैं ठाकुर जो के दर्शन के लिए उनकी खोज में वन-वन घूमता फिरा हूँ। लेकिन अब तक पता नहीं चला। मेरा मन अस्थिर हो उठा है। ललिता ! तुम जरा मेरी सहायताकरो न !"

ललिताने हंसते हुए कहा, "ओह! यह बात है! मुझे पहले क्यों नहीं बतलाया ? अबतक तो दर्शन हो चुके होते। ठीक जगह पहुंचे हैं। और तकलीफ न होगी। मैं पिताजी से कहती हूँ। वे दर्शन करा देंगे।"

विद्यापति आनंद गद् गद् हो उठे।

ललिता ने विनीत भाव से अपने पिता से सारी बातें बतलाईं। पिता का दिल पसीज उठा। बेटी-दामाद का मामला। मना कैसे कर सकते ? उन्होंने हामी भरी। विद्यापति की आँखों में पट्टी बाँधी जाएगी। वे राह का पता नहीं पा सकते, लेकिन उन्हें ठाकुरजी के दर्शन होंगे। वही हुआ। एक रात वे विश्वावसु के पीछे पीछे चले। अंगाछे के छोर में छिपा कर थोड़ा सरसों बाँध रखा था। वह रास्ते भर धीरे-धीरे गिरता गया। वे ठाकुरजी के यहाँ पहुंच गये। आँखें खोल दी गईं। ठाकुरजी के दर्शन पा कर वे आनंद विभोर हो नाच उठे। आह! इतने दिनों के बाद ठाकुरजी को मेरे दिल की बात मालूम हुई।

राजा इन्द्रद्युम्न को मनोकामना पूरो हुई। फिर एकबार आँखों पर पट्टी बाँधी गई। वे घर लौटे।



कुछ दिन बोत गये। विद्यापति का मन अस्थिर हो रहा था। राजा इन्द्रद्युम्न के यहाँ लौटना होगा। खुश खबरो जल्दी हो देना आवश्यक हैं। बिना किसी को कुछ बताये वे घर से निकले। सरसों के पौधों को देखते हुए वे आगे बढ़ते गये।

ठाकुर के यहाँ जाने का रास्ता मिल गया । ठाकुर के सामने माथा टेक कर वे राजा के पास लौटे । उस समय उनकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था ।



इन्द्रद्युम्न ने विद्यापति से सारी बातें सुनीं । राजा और रानी खुशी से बाँसों उछलने लगे । दूसरे दिन सबेरे, राजा

दल-वल समेत ठाकुर के उस गुप्त पीठ में पहुँचे । विश्वावसु का दिल दुख से टूट पड़ा था । ताज्जुब की बात । ठाकुर कहाँ हैं ? क्या वे गायब हो गये ? विस्वावसु की छाती फटी जा रही थी । यह कैसी अनहोनी हुई? पागल की भांति वे खोजते फिरे । दैवी वाणी सुनाई पड़ी—"परेशान मत हो । मैं स्थान छोड़ कर नहीं गया, तेरे पास ही हूँ । विस्वावसु को थोड़ी सी राहत मिली ।"



इन्द्रद्युम्न भी ठाकुर को वहाँ न पा कर दुख से टूट पड़े । वे ठाकुर की आराधना में बैठे । उन्हें लगा: कि कान में

कोई कह रहा है—"समुद्र में दारु का कुन्दा तैर रहा है। बांकि मुहाने के पास वह अटकेगा। उसे ला कर मूर्त्ति गढ़ो, मंदिर बनाओ, वहीं मेरी पूजा करो। भक्त की मनोकामना पूरी हुई।

" भगत वत्सल भगवान,
भगतजन का अधीन।"

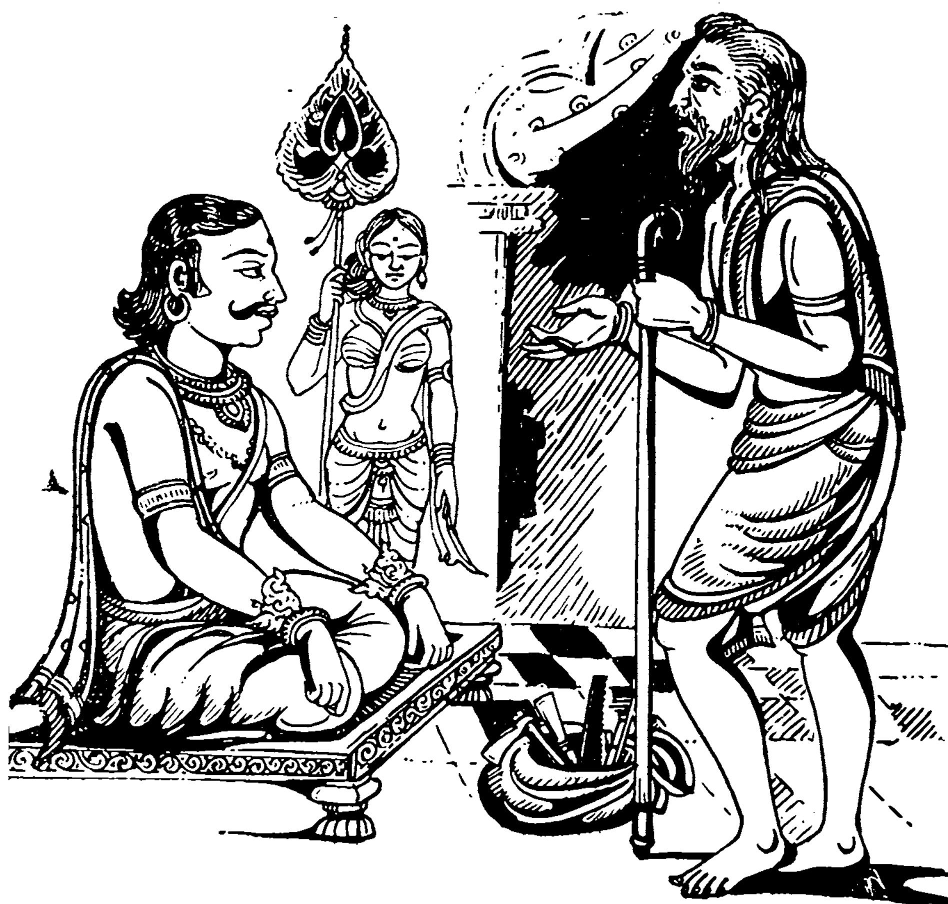
इन्द्रद्युम्न लौट गये। दारु की खोज शुरू हुई। संधान मिल गया। दारु बांकि-मुहाने पर पहुँच चुका है। उन्होंने सेना और सामन्तों के साथ उसे उठाया। लेकिन दारु जरा भी न हिला। तो क्या फिर कोई गलती हुई! वे फिर ठाकुर से निर्देश पाने की आशा में ध्यान लगा कर बैठ गये। इस बार आदेश मिला—"विश्वावसु और विद्यापति के उठाने से दारु उठेगा।" वही हुआ।

बुलाये जाने पर विश्वावसु आये। विद्यापति के साथ उन्होंने दारु उठाया। दारु सोला जैसा हल्का हो ऊपर उठा। राजा ने कुशल बढ़इयों को बुला कर मूर्त्ति गढ़ने की फरमाइश की। रानी गुण्डिचा की फरमाइश थी कि मूर्त्ति बहुत सुन्दर हो।

काम शुरू हुआ। अजीब बात है। छेनी-हथौड़े सब जवाब दे चुके हैं। दारुपर छेनी का कोई दाग भी नहीं बैठता। सभी परेशान थे। राजा सोच में पड़ गये। क्या ठाकुर की परीक्षा खतम नहीं हुई? धन्य हो ठाकुर, धन्य है तुम्हारी महिमा।

एक बूढ़े ब्राह्मण राजा के पास आये। उन्होंने कहा कि मैं मूर्त्ति गढ़ दूंगा। राजा बहुत खुश हुए। रानी गुण्डिचा को

कोई खुशी नहीं हुई। उन्होंने सोचा, ये तो मरियल जर्जर बूढ़े हैं। हथौड़ा उठाने के लिए बाँह में ताकत नहीं। वे क्या मूर्त्ति गढ़ेंगे ? रानी को यह पता नहीं चला कि स्वयं विश्व-



कर्मा ब्राह्मण के वेश में आये हैं। पता कैसे चले ? ब्राह्मण ने कहा, "मूर्त्ति गढ़ने के समय मकान का दरवाजा बंद रहेगा। इक्कीस दिनों तक नहीं खुलेगा। यदि कोई बात न मान कर

खोल देगा तो काम बंद हो जाएगा । मूर्त्ति जहाँ तक गढ़ी गई होगी, वहीं रुक जाएगी। इसलिए मना करते हुए उन्होंने कहा—

"तय-तिथि तक राजा यहाँ न आओगे,
सतर्क हो सुनो राजा द्वार न खोलोगे"

राजा इस बात पर राजी हो गये। बाहर से किवाड़-झरोखे बंद कर दिये गये। लाखा से मूंद दिया गया। सबको मना कर दिया गया—कोई वहाँ न जावे। काम शुरू हुआ। बाहर ठुक ठाक ध्वनि सुनाई देती थी। पन्द्रह दिनों के बाद और कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ी। राजा के मन में कई भावनाएँ उठीं। तो क्या काम हो गया ? चलता होता तो आवाज सुनाई देती। बंद क्यों हुई ?

रानी भी परेशान हो उठीं। उन्होंने कहा, "पहले से मैं सोच रही थी कि यही बात होगी। क्या बंद कमरे में बूढ़े ब्राह्मण का दम घुट गया ? काम चालू रहता तो जरूर आवाज आती। किवाड़ खोल कर देखा जाय।"

राजा रानी की बात पर राजी नहीं हुए। किवाड़ खुलने से शपथ टूट जाएगी। ठाकुर असंतुष्ट होंगे। अमंगल होगा। रानी गुण्डिचा नहीं मानीं। उन्होंने किवाड़ खोलने के लिए बाध्य किया। अन्त में राजा ने आदेश दिया। किवाड़ खोला गया। ऐं ... यह क्या ? तीनों दारु-मूर्त्तियां अधूरी ही रह गई हैं। हाथ-पैर कुछ भी नहीं। ब्राह्मण कहाँ गये ? यह कैसी अनहोनी हुई ?

राजा की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे। रानी भी अपना आवेग नहीं रोक पाईं। वे रोने लगीं। बात चारों ओर फैल गई।

"औरत की बात से देवता अधूरा।"

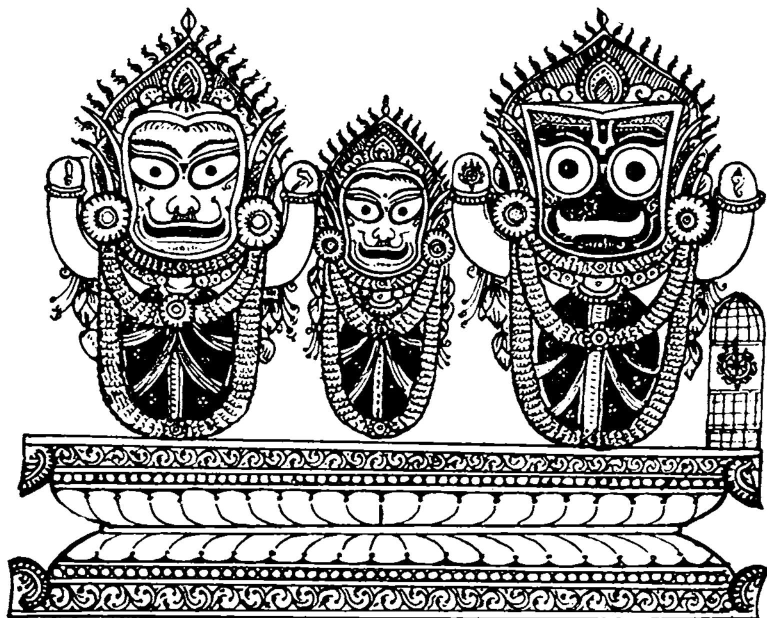
राजा को इस घटना से गहरा आघात पहुंचा। यह उन्होंने कैसा पाप किया ? और कुछ दिन सावधानी बरतते तो, ऐसी हालत न होती। इतना पाप ले कर जीने की अपेक्षा मरजाना अच्छा है।

इन्द्रद्युम्न कुश शय्या बिछा कर मृत्यु की प्रतीक्षा में सोये। भावग्राही भगवान भक्त के मन की बात समझ गये। स्वप्न में आदेश हुआ, "दुखी होने की कोई बात नहीं। हमारी इच्छाएँ पूरी हुई हैं। हम सत् युग, द्वापर और त्रेता में बहुत घूमे हैं। कलियुग में हम निश्चल हो बैठेंगे। जो सिर्फ बैठा रहेगा, उसका हाथ-पैर होना या न होना बराबर है। अब उठ। हमें मन्दिर में स्थापन कर और पूजा कर।

सपना टूट गया। राजा की आँखें खुलीं। देखा, तीन मूर्त्तियाँ निश्चल हो कर ध्यान में बैठी हैं। सारे दुःख भुला कर वे काम में लग गये। नीलाचल धाम में मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा की। स्वर्ग के देवता निमन्त्रण पा कर आये। स्वयं ब्रह्मा ने मन्दिर की प्रतिष्ठा की। तीनों लोक आज उमङ्ग में उछल रहे हैं। तीन रथों पर आरूढ़ हो ठाकुर श्रीमन्दिर में विराजे हैं।

रत्न सिंहासन पर तीनों देव बैठ गये हैं—जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा। दुःखी जनों के पाप-ताप दूर करेंगे। वे अनाथ के नाथ, अगति की गति हैं। बाद में उन तीन ठाकुरों के पास एक और स्तंभ ठाकुर के रूप में पूजा पाने लगे। वह है श्रीकृष्ण जी का सुदर्शन चक्र। अब वे चार हो गये। चारों

मूर्त्तियाँ मिल कर "पुरुषोत्तम" बनीं । उनका क्षेत्र पुरुषोत्तम क्षेत्र हुआ । एकत्र सभी ठाकुरों के दर्शन हुए तो वही जगन्नाथ दर्शन हुआ । किसी को छोड़ना ठीक नहीं ।



ठाकुरो की तो स्थापना हो गई, चलें उनके दर्शन करें । बलभद्र जी का मुँह देखने में सफेद, उनकी आँखें और बाँहें हैं । सुभद्रा जी के हाथ नहीं, आँखें हैं, उनके तन का रंग पीला है । जगन्नाथ जी की आँखें गोलाकार और उज्ज्वल हैं, दो बाँहें हैं । उनके मुँह का रंग काला है । सुदर्शन स्तंभ देखने में लाल है । हमारे ठाकुर जी के हाथ नहीं, फिर भी संसार को अपनाने के लिए उन्होंने बाँहें फैलाई हैं । आँखें स्थिर रहने पर भी सब देखती हैं । कान न हो कर भी सारे संसार की गुहार उनके कानों में पड़ती है । धन्य हैं जगन्नाथ जी और धन्य हैं उनकी लीलाएँ ।

राजा इन्द्रद्युम्न किस युग के हैं ? उनकी कीर्त्ति के लिए आज भी श्री मन्दिर में इन्द्रद्युम्न की जयकार मनायी जाती है—"इन्द्रद्युम्न की जय"। खुश हो कर जगन्नाथ महाप्रभु ने उनसे वरदान माँगने को कहा था। लेकिन राजा ने एक अद्भुत वर माँगा। उन्होंने कहा, हे ठाकुरजी, मुझे यही वरदान दें कि मेरे कुल में पानी तक देने के लिए कोई न रहे। उन्होंने ऐसा वरदान क्यों माँगा था ? शायद उनकी कीर्त्ति पर गर्व कर सकते हैं; इसलिए उन्होंने ऐसा वरदान माँगा।

रानी गुण्डिचा भी धन्य हैं। उन्होंने गुण्डिचा मंदिर बनवाया था। वहाँ ठाकुर के दारु विग्रह बनाए गये थे। रानी के नाम से हम गुण्डिचा यात्रा अब भी मनाते हैं। आषाढ़-शुक्ल द्वितीया को रथयात्रा होती है। ठाकुर श्रीमंदिर से निकल कर अपने जन्मगृह-गुण्डिचा मंदिर में पधारते हैं। यहाँ वे सातदिन रहते हैं। आने-जाने में दो दिन लगते हैं। लौटते समय की यात्रा को "बाहुड़ा यात्रा" कहते हैं। रथयात्रा के समय ठाकुर को पतित पावन कहा जाता है। दीन हीन सभी बड़े दाण्ड (विस्तृत पथ) में उनके दर्शन पाते हैं। सभी भक्तिभाव से रथ खींचते हैं। रथ का रस्सा छूने से लोगों का भारी पातक दूर भागता है।

रथयात्रा के समय नई नई घटनाएँ घटती हैं। बलराम दासजी की कथा कौन नहीं जानते? रथ पर ठाकुर विराजमान हैं। वे भक्ति-भाव से गद्‌गद् हो कर नारियल की खोपड़ी बजा बजा कर रथ के आगे नाचने लगते हैं। सेवकों के कार्यों में बाधा पहुँचती है। उन्हें अपमानित कर वहाँ से निकाल दिया जाता है। भक्त क्या पीछे रह जाएगा ? वे जा कर समुद्र की बालू में रथ का चित्र खींचते हैं, फिर नाचने लगते हैं। इधर रथ का पहिया न हिलता-डुलता था और न आगे बढ़ता था। अचल हो गया था। देखो, खोजो, किसी भक्त के पास ठाकुर

अटक गये हैं। खोज शुरू हुई। अंत में इस पागल को पा कर सभी उसके पैरों पर लोट गये। कहा—आओ, नहीं तो रथ नहीं चलेगा। वे गये, रथ चला। हे ठाकुर! तुम धन्य हो।

सचमुच भगवान भक्त के पास हमेशा बंधे रहते हैं। यही दासिआ बाउरि की बात देखिए न! ठाकुर ने उसका भोग तो हाथ पसार कर खाया था। यही देखिए, ठाकुर ने पुरुषोत्तम देव को युद्ध के समय कितनी सहायता की थी? ठाकुरों ने खुद रत्नसिंहासन से उतर कर सफेद और काले घोड़ो पर सवार हो कांची युद्ध में भाग लिया था। माणिक ग्वालिन धन्य है जिसने ठाकुरों को अपने हाथों दही खिला कर उनकी अंगूठी गिरवी रखी। उसके युग युग के पातकों का नाश हुआ।

ठाकुर की महिमा-कथा पर विचार करने पर एक के बाद एक कितनी कथाएँ याद आ जाती हैं। बंधु महान्ति की कथा कौन नहीं जानता? वह रसोई घर की नाली से बहती हुई बूँद-बूंद माँड़ खा कर, ठाकुर के इन्तजार में पड़ा था। कोई भी उसे नहीं पूछता था। ठाकुर से यह सहा नहीं गया। वे रात को बड़े पण्डे के वेश में आते हैं। सोने की थाली में भोग दे जाते हैं। इधर ठाकुर जी की थाली खोजी गई। किसने चुराई? आखिर बंधु महान्ति पकड़े गये। चोर समझकर उन्हें बेरहमी से पीटा गया। विकल हो उन्होंने कहा, "हे पंडा महाप्रभो! आपने तो खुद आ कर इसी थाली में मुझे खाने को दिया है; मैंने चोरी कैसे की?" उनकी बात कौन सुनता है?

बड़े पण्ड़े ने रात को सपना देखा। ठाकुर ने दर्शन देते हुए कहा, "अरे, ये कैसी बात? उस आदमी को बेकार क्यों पीटा? तुम्हारे घर कोई मेहमान आये तो क्या तुम उनका सत्कार नहीं करते? मेरे द्वार पर भी मेहमान बैठा है, मैंने आवभगत की तो क्या हानि हुई? पण्डे को अपनी गलती समझ में आ गई।

महाप्रसाद की महिमा का क्या कहना ? यह जाति महा-प्रसाद के भोतर अपने बड़े ठाकुर जी के दर्शन करती है। उसके लिए जगन्नाथ जी को तरह उनका महाप्रसाद भो खूब बड़ा है। महाप्रसाद रखे बिना हमारा कोई भो शुभ या अशुभ काम होता हो नहीं। जगन्नाथ जी के पास अन्नभोग लगने के बाद माँ विमला देवो के पास दुबारा भोग चढ़ाया जाता है। इसके वाद वह भोग महाप्रसाद बनता है।

छोटा-बड़ा, राजा-प्रजा, जाति-अजाति सभो एकत्र मिलकर महाप्रसाद पाते हैं। "सभी मनुष्य समान हैं"—इस महामन्त्र को हमें महाप्रसाद ने सिखाया है।

जगन्नाथ जो को कथा जितनो कहो जाय खत्म नहों होतो, जितना भो सुनिए कान और मन नहीं अघाते निरंतर देखते रहें, पलकें न झपकेंगो। जो भी कहा गया, क्या इतने में बस खतम हो गया ? नहीं, उनका भण्डार अनंत है। न कभो खतम हुआ है और न होगा। हरि अनंत, हरि कथा अनंता।

"हे जगत के नाथ जगन्नाथ, तुम धन्य हो
हे बलियार भुज बडे ठाकुर, तुम धन्य हो
धन्य है तुम्हारो करुणा"।

